श्रीविष्णु को समर्पित अन्न (प्रसाद) ग्रहण करने से सम्पूर्ण विषयासक्ति का भलीभाँति निवारण हो जाता है। इस पद्धति का नित्य आचरण करने वाला भक्त कहलाता है। इस प्रकार जो केवल कृष्णप्रसाद को ग्रहण करता है, वह कृष्णभावनाभावित पुरुष उन सभी प्राकृत विकारों का प्रतिकार कर सकता है, जो स्वरूप-साक्षात्कार के पथ में विघ्न उपस्थित करते हैं। इसके विपरीत, इन्द्रियतृप्ति के लिए भोजन करने वाला निरन्तर पापकर्म की अभिवृद्धि करता रहता है, जिससे पुनर्जन्म में पापकर्मों के फल को भोगने के लिये शूकर-कूकर की योनि मिलती है। संसार दोषों से भरा है, परन्तु भगवत्प्रसाद का सेवन करने से जीवन्मुक्त हुए भक्त की इनके आक्रमणों से पूर्ण रक्षा होती रहती है, जबकि ऐसा नहीं करने वाला कलुषित हो जाता है।

अन्न, शाकादि सात्त्विक पदार्थ ही वास्तव में खाने के योग्य हैं। मानव नाना प्रकार के अन्न, शाक, फल, आदि का उपयोग करता है; पशु उसके बचे शाक, तृण, तथा वनस्पति का आहार करते हैं। माँसाहारी मनुष्य भी अन्तिम रूप में वनस्पति उत्पादन पर ही निर्भर करते हैं। अतः मूल रूप में हम सब कृषि-उत्पादन पर आश्रित हैं, बृहत् कारखानों पर नहीं। कृषि-उत्पादन का आधार पर्याप्त परिवर्षण है। वर्षा के नियन्ता इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब देव श्रीभगवान् के सेवक हैं। श्रीभगवान् केवल यज्ञों से प्रसन्न होते हैं। अतएव जो यज्ञ नहीं करता, वह प्रकृति के नियम के अनुसार सदा अभावग्रस्त रहता है। अस्तु, कम से कम दुर्भिक्ष से मानव समाज को बचाने के लिए तो यज्ञ का और विशेष रूप से इस युग के यज्ञ—संकीर्तन का आयोजन अवश्य ही करना चाहिए।

7/3

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।१५।।

कर्म=कर्म; **ब्रह्म**=वेद से; **उद्भवम्**=उत्पन्न हुआ; **विद्धि**=जान; **ब्रह्म**=वेद; **अक्षर**=परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण से; **समुद्भवम्**=प्रकट हुए हैं; **तस्मात्**=इस कारण; **सर्वगतम्**=सर्वव्यापी; **ब्रह्म**=ब्रह्मतत्त्व; **नित्यम्**=सदा; **यज्ञे**=यज्ञ में; **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है।

अनुवाद

स्वधर्म रूप कर्मों का विधान वेदों में है तथा वेद साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण से प्रकट हुए हैं। इसलिए सर्वव्यापी परब्रह्म यज्ञ में नित्य प्रतिष्ठित है।।१५।।

तात्पर्य

इस श्लोक में **यज्ञार्थकर्म** अथवा श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए कर्म करने की महिमा का अधिक स्पष्ट वर्णन है। यज्ञपुरुष श्रीविष्णु के सन्तोष हेतु कर्म करने के लिए हमें ब्रह्म' अर्थात् अपौरुषेय वेदों से कर्म विधान जानना होगा, क्योंकि वेद ही कर्म-विधि की संहिता हैं। वेदाज्ञा के बिना सम्पादित क्रिया को 'विकर्म' अथवा पाप कहते हैं। अतएव कर्मबन्धन मुक्ति के लिए वेद-निर्देश सदा ग्रहणीय हैं। जिस प्रकार